सृष्टि उत्पत्ति क्यों और कैसे ?

मानव का प्रादुर्भाव कहाँ ?

सत्यार्थप्रकाश के अष्टम
समुल्लास के आधार पर

आचार्य श्री पं० उदयवीर शास्त्री
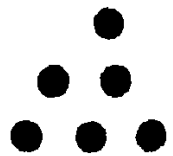
आधुनिक दार्शनिक जगत् की उत्पत्ति—प्रकृति और ब्रह्म की स्थिति—दर्शनो की एकता प्राणी का प्रादुर्भाव कैसे और मनुष्योत्पत्ति कहाँ, विषयो के सम्बन्ध मे अधकार में भटक रहे है।

ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास मे इस विषय पर "सत्य" मार्ग दर्शन करा संसार के मस्तिष्कों का मार्ग-दर्शन किया है।

प्रसिद्ध दार्शनिक, और इतिहास-वेत्ता विद्वान् लेखक ने ऋषि मन्तव्यों को सरल प्रकार से उपस्थित कर सभी को विचार की दिशा प्रदान की है।

काश कि भटकता विज्ञान—उलझता दर्शन ऋषि के प्रकाश को देख पाता।

—सम्पादक
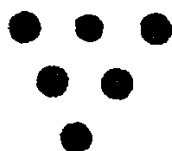
आठ

●

सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानव है। मानव को अपनी इस स्थिति के विषय मे कदाचित् अभिमान हो सकता है, पर अधिकाधिक उन्नति कर लेने पर भी यह सृष्टि रचना मे सर्वथा असमर्थ रहता है। इसका कारण है, मानव जब अपने रूप मे प्रकट होता है, उससे बहुत पूर्व सृष्टि की रचना हो चुकी होती है, इसलिये यह प्रश्न ही नहीं उठता कि मानव सृष्टि रचना कर सकता है। तब यह समस्या सामने आती है, कि इस दुनिया को किसने बनाया होगा ?

भारतीय प्राचीन ऋषियो ने इस समस्या का समाधान किया है, जगत् को बनाने वाली शक्ति का नाम 'परमात्मा' है, इसको ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। यह ठीक है, कि परमात्मा इस पृथिवी चाँद सूरज आदि समस्त लोक-लोकान्तर रूप जगत् को बनाने वाला है, परन्तु जिस मूलतत्व से इस जगत् को बनाया जाता है, वह अलग है। उसका नाम प्रकृति है। प्रकृति त्रिगुणात्मक कही जाती है। वे तीन गुण हैं, सत्व, रजस्, तमस्। इन तीन प्रकार के मूल तत्वो के लिये 'गुण' पद का प्रयोग इसीलिये किया जाता है कि ये तत्व आपस मे गुणित होकर, एक-दूसरे में मिथुनीभूत होकर, परस्पर गुथकर ही जगद्रूप मे परिणत होते हैं। जगत् की रचना पुण्यापुण्य, धर्माधर्म रूप शुभ-अशुभ कर्मों के करने और उनके फलों को भोगने के लिये की जाती है। इन कर्मों को करने और भोगने वाला एक और चेतन तत्व है,

जिसको जीवात्मा कहा जाता है। ये तीनों पदार्थ अनादि हैं—ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति।

जगत उत्पन्न होता है या नहीं ?

प्रश्न—यह जगत् कभी उत्पन्न नही होता, अनादि काल से ऐसा ही चला आता है और अनन्त काल तक ऐसा ही चला जायगा, ऐसा मान लेने पर इसके बनने-बनाने का प्रश्न ही नही उठता, तब इसको बनाने के लिए ईश्वर की कल्पना करना व्यर्थ है। यह चाहे प्रकृति का रूप हो या कोई रूप हो, अनादि होने से ईश्वर की कल्पना अनावश्यक है।

उत्तर—जगत् को जिस रूप में देखा जाता है, उससे इसका विकारी होना स्पष्ट होता है। यदि जगत् अनादि-अनन्त एक रूप हो, तो यह नित्य माना जाना चाहिये, नित्य पदार्थ अपने रूप मे कभी परिणामी या विकारी नहीं होता परन्तु जागतिक पदार्थों में प्रतिदिन परिणाम होते देखे जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है, कि पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरो की दृश्यमान स्थिति अपरिणामिनी अथवा अविकारिणी नहीं है। इसमें परिणाम का निश्चय होने पर यह मानना पड़ेगा कि यह बना हुआ पदार्थ है, तब इसके बनाने वाला भी मानना होगा।

प्रश्न—पृथिव्यादि को विकारी मानने पर भी बनाने वाले की आवश्यकता न होगी, जिन मूलतत्त्वो से इनका परिणाम होना है, वे स्वत. इस रूप मे परिणत होते रहते हैं। ससार मे अनेक पदार्थ स्वतः होते देखे जाते है। अनेक स्वचालित यन्त्रो का आज निर्माण हो चुका है।

उत्तर—पृथिव्यादि समस्त जगत् जड़ पदार्थ है, चेतना-हीन। इसका मूल उपादान तत्व भी जड़ है। किसी भी जड़ पदार्थ मे चेतन की प्रेरणा के बिना कोई क्रिया होना संभव नहीं। चेतना के सहयोग के बिना किसी जड़ पदार्थ में स्वत प्रवृत्ति होती नहीं देखी जाती। इसके लिये न कोई युक्ति है न दृष्टान्त स्वचालित यन्त्रो के विषय मे जो कहा गया, उन यन्त्रो का निर्माण तो प्रत्यक्ष देखा जाता है। उनको बनाने वाला शिल्पी उसमें ऐसी व्यवस्था रखता

है, जिसे स्वचालित कहा जाता है। यन्त्र अपने आप नहीं बन गया है, उसको बनाने वाला एक चेतन शिल्पी है, और उस यन्त्र की निगरानी व साज-संवार बराबर करनी पड़ती है, यह सब चेतन-सहयोग-सापेक्ष है। इसलिये यह समझना, कि पृथिव्यादि जगत् अपने मूल उपादान तत्वो से चेतन निरपेक्ष रहता हुआ स्वतः परिणत हो जाता है, विचार सही नही है। फलतः जगत् के बनाने वाले ईश्वर को मानना होगा।

प्रकृति की आवश्यकता ?

प्रश्न—आपने यह स्पष्ट किया, कि ईश्वर को मानना आवश्यक है, यदि ऐसा है, तो केवल ईश्वर को मानने से कार्य चल सकेगा, ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् माना जाता है, वह अपनी शक्ति से जगत् को बना देगा, उसके अन्य कारण प्रकृति की क्या आवश्यकता है ? कतिपय आचार्यों ने इस विच।र को मान्यता दी है।

उत्तर—ईश्वर जगत् को बनाने वाला अवश्य है, पर वह स्वयं जगत् के रूप मे परिणत नही होता। ईश्वर चेतनतत्व है, जगत् जड पदार्थ है। चेतना का परिणाम जड़ अथवा जड़ का परिणाम चेतन होना संभव नहीं। चेतन स्वरूप से सर्वथा अपरिणामी तत्व है। यदि चेतन ईश्वर को ही जड़ जगत् के रूप में परिणत हुआ माना जाय तो यह उस अनात्मवादी की कोटि मे आ जाता है, जो चेतन की उत्पत्ति जड़ से मानता है। कारण यह है, कि यदि चेतन जड़ बन सकता है, तो जड को भी चेतन बनने से कौन रोक सकता है। इसलिये चेतन से जड की उत्पत्ति अथवा जड़ से चेतन की उत्पत्ति मानने वाले दोनो वादी एक ही स्तर पर आ खड़े होते है। फलतः यह सिद्धान्त बुद्धिगम्य है कि न चेतन जड बनता है और न जड़ चेतन बनता है, चेतन सदा चेतन है, जड सदा जड़ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जड़ जगत् जिस मूल तत्त्व का परिणाम है, वह जड़ होना चाहिये। इसलिये चेतन ईश्वर से अतिरिक्त मूल उपादान तत्व मानना होगा, उसी का नाम प्रकृति है।

जब यह कहा जाता है, कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर अपनी शक्ति से जगत् को उत्पन्न कर देगा, उस समय प्रकृति को ही उसकी शक्ति के रूप मे कथन कर दिया जाता है। वैसे सर्वशक्तिमान् पद के अर्थ मे यही भाव अन्तर्निहित है कि

जगत् की रचना करने मे ईश्वर को अन्य किसी कर्त्ता के सहयोग की अपेक्षा नही रहती । वह इस कार्य के लिये पूर्ण शक्त है, अप्रतिम समर्थ है। फलतः यह जगत् परिणाम प्रकृति का ही होता है, ईश्वर केवल इसका निमित्त, प्रेरयिता, नियन्ता व अधिष्ठाता है । यही सत्य स्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल घर और स्थिति का स्थान है।

इस प्रसंग मे सत्यार्थप्रकाश [स्थूलाक्षर, वेदानन्द संस्करण, पृ० १६१, पक्ति १०-१२] के अन्दर एक वाक्य है, जिसे अस्पष्टार्थ कहा जाता है । वह वाक्य है —'यह अब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्त्तमान था, अभाव न था, इस वाक्य के अभिमत अर्थ को स्पष्ट करने व समझने के लिये इसमे से दो अवान्तर वाक्यांशो का विभाजन करना होगा। इस वाक्य मे से 'और जीवात्मा ब्रह्म' इन पदों को अलग करके रख लीजिये फिर शेष वाक्य को पढ़िये, वह इस प्रकार होगा—'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और प्रकृति मे लीन होकर वर्त्तमान था, अभाव न था।' इतना वाक्य एक पूरे अर्थ को व्यक्त करता है । जगत् जो अब हमारे सामने विद्यमान है, यह सृष्टि के पूर्व अर्थात् प्रलय अवस्था मे असत् के सदृश था, सर्वथा असत् या तुच्छ न था, कारण यह है कि यह प्रकृति मे लीन होकर वर्तमान था, तात्पर्य यह कि कारण-रूप से विद्यमान था, इससे प्रतीत होता है, कि ऋषि ने कार्यकारणभाव मे सत्कार्य सिद्धान्त को स्वीकार किया है, प्रलय अवस्था मे जगद्रूप कार्य कारण रूप से विद्यमान रहता है, उसका सर्वथा अभाव नहीं हो जाता।

जो पद हमने उक्त वाक्य मे से अलग करके रक्खे हैं वे दो अवान्तर वाक्यो को बनाते है—१—'और जीवात्मा वर्त्तमान था' । २—'ब्रह्म वर्त्तमान था' तात्पर्य यह कि प्रलय अवस्था मे प्रकृति के साथ जीवात्मा और ब्रह्म भी वर्तमान थे । इस प्रकार उक्त पक्ति से ऋषि ने उस अवस्था मे तीन अनादि पदार्थों की सत्ता को स्पष्ट किया है तथा इस मन्तव्य का एक प्रकार से प्रत्याख्यान किया है, जो उस अवस्था मे एक मात्र ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हैं, जीव तथा प्रकृति की स्थिति को नही मानते, इनका उद्भव ब्रह्म से ही मान लेते हैं।

तीन अनादि पदार्थों के मानने पर जगद्रचना की व्याख्या सर्वाधिक निर्दोष की जा सकती है । कारण यह है कि लोक मे किसी भी रचना के हेतु तीन

प्रकार के देखे जाते हैं। प्रत्येक कार्य का कोई बनाने वाला होता है, कुछ पदार्थ होते है, जिनसे वह कार्य बनाया जाता है, कुछ सहयोगी साधन होते है। पहला कारण निमित्त कहाता है, दूसरा उपादान और तीसरा साधारण। संसार में कोई ऐसा कार्य संभव नही, जिस के ये तीन कारण नही। जब दृश्यादृश्य जगत् को कार्य माना जाता है तो उसके तीनो कारणो का होना आवश्यक है। इसमे जगत् की रचना का निमित्त कारण ईश्वर, उपादान कारण प्रकृति तथा जीवो के कृत शुभाशुभ कर्म अथवा धर्माधर्म आदि साधारण कारण होते हैं। इसलिये इन तीनो पदार्थो को अनादि माने बिना सृष्टि की निर्दोष व्याख्या नहीं की जा सकती।

ब्रह्म से ही जगत्-उत्पत्ति नहीं ?

प्रश्न—वेदान्त दर्शन पर विचार करने वाले तथाकथित नवीन आचार्यो की यह मान्यता है, कि एकमात्र ब्रह्म को वास्तविक तत्त्व मानने पर सृष्टि की व्याख्या की जा सकती है। उनका कहना है, कि जगत् के निमित्त और उपादान कारण को अलग मानना अनावश्यक है। एकमात्र ब्रह्म स्वय अपने से जगत् को उत्पन्न कर देता है, उसे अन्य उपादान की अपेक्षा नही। लोक मे ऐसे दृष्टान्त देखे जाते है। मकड़ी अपने आप से ही जाला बुन देती है, बाहर से उसे कोई साधन-सहयोग लेने की अपेक्षा नही होती, ऐसे ही जीवित पुरुष से केश-नख स्वत: उत्पन्न होते रहते है। इसी प्रकार ब्रह्म अपने से ही जगत् को उत्पन्न कर देता है।

उत्तर—यह बात पहले कही जा चुकी है, यदि ब्रह्म अपने से जगत् को बनावे तो वह विकारी या परिणामी होना चाहिये। ब्रह्म चेतन तत्व है, चेतन कभी विकारी नही होता। इसके अतिरिक्त यह भी बात है, चेतन ब्रह्म का परिणाम जगत् जड कैसे हो जाता ? क्योकि कारण के विशेष गुण कार्य में अवश्य आते है। या तो जगत् भी चेतन होता, या फिर कार्य जड़-जगत् के अनुसार उपादान कारण ईश्वर या ब्रह्म को भी जड मानना पडता। पर न जगत् चेतन है, और न ईश्वर जड। इसलिये ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं माना जा सकता।

ब्रह्म उपादान से जगत् की उत्पत्ति में मकड़ी आदि के जो दृष्टान्त दिये जाते हैं, उनकी वास्तविकता की ओर किसी ब्रह्मोपादानवादी ने क्यों ध्यान नहीं दिया, यह आश्चर्य की बात है। ये दृष्टान्त उक्त मत के साधक न होकर केवल बाधक हैं। मकडी एक प्राणी है, जिसका शरीर भौतिक या प्राकृतिक है, और उसमे एक चेतन जीवात्मा का निवास है। उस प्राणी द्वारा जो जाला बनाया जाता है, वह उस भौतिक शरीर का विकार या परिणाम है, चेतन जीवात्मा का नही। यह भी ध्यान देने की बात है कि शरीर से जाला उसी अवस्था मे बन सकता है, जब शरीर का अधिष्ठाता चेतन जीवात्मा वहाँ विद्यमान रहता है। वह स्थिति इस बात को स्पष्ट करती है कि केवल जड़ तत्व चेतन के सहयोग विना स्वतः विकृत या परिणत नही होता। दृष्टान्त से स्पष्ट है, जाला रूप जड विकार जड शरीर का है, चेतन जीवात्मा का नही। इस दृष्टान्त का उद्भावन करने वाले उपनिषद (यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च) वाक्य मे यही स्पष्ट किया है, कि जैसे मकड़ी जाला बनाती और उसका सहार करती है, उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से यह विश्व प्रादुर्भूत होता है।

उपनिषद के उस वाक्य में 'यथा' और 'तथा' शब्द ध्यान देने योग्य हैं। जैसे मकड़ी जाला बनाती और उपसंहार करती है 'तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्' वैसे अविनाशी ब्रह्म से यहाँ विश्व प्रादुर्भूत होता है। अब देखना यह है कि जाला मकड़ी के भौतिक शरीर से परिणत होता है और बनाने वाला अधिष्ठाता चेतन आत्मा वहाँ इस प्रवृत्ति का प्रेरक है, चेतन स्वयं जाला नहीं बनता, ऐसे ही ब्रह्म अपने प्रकृति रूप देह से विश्व का प्रादुर्भाव करता है, समस्त विश्व परिणाम प्रकृति का ही है, प्रकृति से होने वाली समस्त प्रवृत्तियों का प्रेरक व अधिष्ठाता परमात्मा रहता है। वह स्वय विश्व के रूप मे परिणत नहीं होता, इसलिए वह विश्व का केवल निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं हो सकता।

जगत् का निर्माण क्यों ?

प्रश्न—यह ठीक है, कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर है, और वह प्रकृति मूल उपादान से जगत् की रचना करता है; परन्तु प्रश्न है, जगत् की रचना में उसका क्या प्रयोजन है ? जगत् की रचना किस लक्ष्य को लेकर की जाती है, यदि इसका कोई प्रयोजन हो नही, तो रचना व्यर्थ है, उसने

क्यों ऐसा किया ? वह तो सर्वज्ञ है, फिर ऐसी निष्प्रयोजन रचना क्यों ?

उत्तर—प्रयोजन कामनामूलक होता है। ब्रह्म को ब्रह्म ज्ञानियों ने पूर्णकाम व आप्तकाम बताया है, इसलिये सृष्टि रचना में ईश्वर का कामना मूलक कोई निजी प्रयोजन नहीं रहता। यह एक व्यवस्था है और ईश्वरीय व्यवस्था है, वह स्वयं अपनी व्यवस्था से बाहर नहीं जाता, उसके नियम सत्य हैं और पूर्ण हैं। उनके अनुसार ईश्वर सृष्टि रचना करता है—जीवात्माओं के भोग और अपवर्ग की सिद्धि के लिये। उसका यह कार्य उसकी एक स्वाभाविक विशेषता है, इसमे कभी कोई अन्तर या विपर्यास आने की सभावना नहीं की जा सकती। सृष्टिरचना के द्वारा ही परमात्मा का बोध होता है, और इस मार्ग से जीवात्मा मोक्ष को प्राप्त करता है। जब यह प्राप्त नहीं होती, तब कर्मों को करता और उनके अनुसार सुख-दुःख आदि फलों को भोगा करता है, सृष्टि-रचना का यही प्रयोजन है।

निराकार से साकार सृष्टि कैसे ?

प्रश्न—ईश्वर को निराकार माना जाता है, वह निराकार होता हुआ सृष्टि की रचना कैसे करता है ? लोक मे देखा जाता है, कि कोई भी कर्त्ता देहादि साकार सहयोगी के बिना किसी प्रकार की रचना करने मे असमर्थ रहता है, तब निराकार ईश्वर इस अनन्त विश्व की रचना करने मे कैसे समर्थ होता है ?

उत्तर—अनन्त विश्व की रचना करने वाला निराकार ही संभव हो सकता है। जहाँ ईश्वर को निराकार माना गया है, वहाँ उसे सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् भी कहा गया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'सर्वशक्तिमान्' का यही तात्पर्य है, कि वह जगद्रचना मे अन्य किसी सहायक की अपेक्षा नहीं रखता, उसमे अनन्त शक्ति व पराक्रम है उसका चैतन्य रूप सामर्थ्य असीम है; वह उसी सामर्थ्य द्वारा मूल उपादान जड प्रकृति को प्रेरित करता है, उसकी अनन्त सामर्थ्य युक्त व्यवस्था सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों में सर्वत्र व्याप्त है। वह कण-कण मे अपना कार्य किया करती है। जीवात्मा अल्पज्ञ, अल्पशक्ति एवं एकदेशी है। उसे अपने किसी कार्य को सपन्न करने के लिये अन्तरंग साधन करण (बुद्धि मन आदि) तथा बाह्य साधन देह एवं देहावयवो की अपेक्ष

रहती है। इसलिये लोक मे देखी गई स्थूल व्यवस्था के अनुसार ऐश्वरी सृष्टि के विषय में ऊहा करना उपयुक्त न होगा।

यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो जीवात्मा द्वारा की जाने वाली प्रेरणाओं मे उस स्थिति को पकड़ा जा सकता है, जहाँ किसी साकार सहयोगी की अपेक्षा नही जानी जाती। विचार कीजिये आप कुर्सी पर बैठे हैं, मेज आपके सामने है, मेज पर आप का हाथ निश्चेष्ट रक्खा हुआ है, उससे कुछ दूर मेज के कोने पर कलम रक्खा है, आप उसे उठाकर कुछ लिखना चाहते है। आपकी इस इच्छा के साथ ही हाथ में हरकत होती है, वह ऊपर उठता और अंगुलियो में कलम पकड़ कर फिर पहली जगह आ टिकता है। अब विचारना यह है कि हाथ में उठने के लिये जो क्रिया हुई है, वह एक प्रेरणा का फल है, देह के अन्दर बैठा जो आपका चेतन आत्मा है, उसी से यह प्रेरणा प्राप्त होती है। प्रेरणा देने की सीमा में चैतन्य के अतिरिक्त किसी अन्य साकार सहयोगी का समावेश नह है। यहाँ केवल चेतन आत्मा प्रेरणा दे रहा है, जो निराकार है। उसके अन्य साधन बुद्धि, मन आदि प्रेर्यमाण सीमा में आते हैं, प्रेरक सीमा में नहीं। इससे यह परिणाम निकलता है, कि चैतन्य एक ऐसा तत्व है, जो प्रेरणा का अन्य आधार व स्रोत है, जिसमे किसी अन्य साकार सहयोगी की अपेक्षा नही रहती। जीव-चेतन की शक्ति जैसे अति सीमित है, ऐसे ब्रह्म-चेतन की शक्ति असीमित है, जैसे जीव केवल देह मे प्रेरणा प्रदान करता है, ऐसे परमेश्वर अनन्त सामर्थ्ययुक्त होने से अनन्त विश्व को प्रेरित करता है। सृष्टि रचना के विचार मे यदि साकार सहयोगी की कल्पना की जाय तो वस्तुतः यह रचना ही असंभव हो जायगी, क्योकि वह सहयोगी भी विना रचना के असंभव होगा। फलतः अनन्त विश्व की रचना के लिये निरपेक्ष निराकार चैतन्य ही समर्थ हो सकता है, यह निश्चित है।

बिना कारण क्यों नहीं ?

प्रश्न—ईश्वर जब सर्वशक्तिमान् है, तो वह बिना कारण के ही जगत् को क्यो नही बना देता ?

उत्तर—यह सभव नहीं। बिना कारण के कोई कार्य नही होता, कारण न होना 'अभाव' का स्वरूप है, जो अभाव है वह कभी भावरूप मे परिणत नही हो सकता, और न भावरूप पदार्थ का कभी सर्वथा अभाव होता है।

बिना कारण अथवा अभाव से जगत की उत्पत्ति कहना वन्ध्यापुत्र के विवाह के समान मिथ्या है।

प्रश्न—जब कारण के बिना कुछ नही हो सकता, तो कारण का भी कोई कारण मानना होगा, और उसका भी कोई अन्य कारण; इस प्रकारं तुम्हारे इस कथन मे अनवस्था दोष आता है, कि कारण के विना कुछ नही हो सकता।

उत्तर—हमने यह नही कहा कि कारण के बिना कुछ नहीं हो सकता। हमने कहा है—कोई कार्य कारण के बिना नही हो सकता। ऐसे भी पदार्थ हैं, जो किसी के कारण हैं, पर वे स्वय किसी के कार्य भी है। ऐसे पदार्थों को 'कारणकार्य' अथवा 'प्रकृति-विकृति' कहा जाता है। जैसे घड़ा मिट्टी स बनता है, मिट्टी पृथ्वी रूप है, पृथ्वी घड़े मकान आदि का कारण होते हुए भी अपने कारणों का कार्य है, अर्थात् जिन कारणों से पृथ्वी की रचना होती है उनका कार्य है। परन्तु जो सव कार्य जगत् का मूल कारण है, उसका और कोई कारण नही होता, जगत का मूल उपादान कारण अनादि पदार्थ है, वह किसी से उत्पन्न या परिणत नहीं होता, यदि ऐसा होता तो वह मूल कारण नहीं हो सकता था। इस प्रकार जैसे जगत् का कर्त्ता निमित्त कारण ईश्वर अनादि है, वैसे ही जगत् का मूल उपादान कारण प्रकृति भी अनादि है। उसका अन्य कोई कारण संभव नहीं, क्योंकि वह कार्य नहीं, केवल कारण है, अतएव अनवस्था दोष की यहाँ संभावना नहीं हो सकती।

अन्य वादों का विवेचन

प्रश्न—आप प्रकृति उपादान से जगत् की सृष्टि कहते हैं, पर अन्य अनेक आचार्यों के सृष्टि की उत्पत्ति के विषय मे विविध विचार हैं, क्या उनमें कोई सत्यता नही है ? उन विचारों को निम्नलिखित वादो के रूप मे उपस्थित किया जा सकता है—शून्यवाद, अभाववाद, आकस्मिक-वाद, सर्वानित्यत्ववाद, भूतनित्यत्ववाद, पृथक्त्ववाद, इतरेतराभाववाद, स्वभाववाद, जगदनादिवाद, जीवेश्वरवाद आदि। क्या इनके अनुसार सृष्टि की यथार्थ व्याख्या सभव नही ?

उत्तर—इन वादो के आधार पर सृष्टि की सत्य एवं पूर्ण व्याख्या होना सम्भव नहीं, ये सब एकदेशी अवैदिक वाद हैं, जो किसी एक अंश पर धुंधला

सा प्रकाश डालते हैं, कहीं वह भी नहीं, प्रत्युत प्रकाश की जगह अन्धकार का ही विस्तार करते हैं। जगत् की यथार्थ विद्यमानता पहले दोनो वादो को ठुकरा देती है। किसी वस्तु का 'होना' कहना अथवा 'उत्पन्न होना' बताना और उसे अकस्मात् कहना परस्पर विरोधी हैं, जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह निश्चित ही अपने कारणो से होगी, यह अलग बात है, कि हम उन कारणो को जान सके या न जान सकें। सब वस्तु अनित्य है, अथवा भूत नित्य हैं इसलिए सब वस्तु नित्य हैं, ये कथन अपने ही मे मिथ्या है, किसी वस्तु का नित्य या अनित्य होना विशिष्ट निमित्तो पर आधारित है, उत्पन्न होने वाली वस्तु अनित्य तथा उत्पाद-विनाश से रहित वस्तु नित्य कही जाती है; यह एक व्यवस्था है। प्रत्येक वस्तु न नित्य हो सकती है, न अनित्य।

पृथक्त्ववाद आधुनिक रसायनशास्त्र से पर्याप्त सीमा तक मेल रखता है। रसायनशास्त्र के अनुसार आज तक ऐसे एक सौ दो पदार्थो का पता लग चुका है, जो मूल रूप में एक दूसरे से पृथक् हैं, एक दूसरे मे किसी का कोई अंश नही है, भविष्य मे और भी ऐसे अनेक पदार्थों का पता लग जाने की सभावना है। सोना, चाँदी, लोहा, ताबा, पारा, गन्धक, जस्ता, सीसा, कैल्शिअम, आक्सीजन, हाइड्रोजन, कॉर्बन, नाइट्रोजन, सिलिकन्, फास्फोरस, ऐल्युमिनिअम, आर्सनिक, प्लैटिनम् आदि सब ऐसे पदार्थ हैं, जो सर्वथा एक दूसरे से पृथक् हैं। किसी मे किसी का कोई अंश नहीं है। पर भौतिकी विज्ञान ने ही इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है, कि ये सब किन्ही मूल तत्त्वो के सम्मिश्रण से बने है। वे मूल तत्त्व प्रोटीन, इलैक्ट्रॉन् और न्यूट्रॉन् है, भारतीय दार्शनिक विचार के अनुसार इन्हे यथाक्रम सत्त्व रजस् तमस् के वर्ग में समझा जा सकता है। वैसे भी उक्त पदार्थों मे से प्रत्येक मे आकाश, काल, सामान्य [जाति] एव नियन्तृशक्ति परमात्मा आदि का विद्यमान रहना अनिवार्य है, इसलिये स्वरूप से इनके पृथक् रहते भी इनमे अन्य पदार्थों का अस्तित्व रहता ही है।

पदार्थों के इतरेतराभाव से सब पदार्थों का अभाव बताना सर्वथा प्रत्यक्ष विरुद्ध है। गाय घोड़ा नही, घोड़ा गाय नहीं, इसलिये न गाय है न घोड़ा, ऐसा कहना नितान्त विचार शून्य है। यद्यपि गाय घोडा नहीं है, पर गाय गाय है, घोड़ा घोड़ा है, उनके अपने अस्तित्व को कैसे झुठलाया जा सकता है।

'स्वभाव' से जगत् की उत्पत्ति कहना, किस अर्थ को प्रकट करता है, यह विचारणीय है। 'स्वभाव' मे 'स्व' पद का अर्थ क्या है ? यदि पद मूल कारण को कहता है, तो इस पद मात्र के अलग कहने से कोई अन्तर नहीं आता, अपने मूल कारण से जगत् उत्पन्न होता है, यही उसका तात्पर्य हुआ। इसी प्रकार वर्तमान रूप मे जगत् को अनादि कहना प्रमाण विरुद्ध है। जागतिक वस्तुओं मे परिणाम व परिवर्तन अथवा उत्पादन-विनाश बराबर देखा जाता है, जो इस के बने हुए होने को सिद्ध करता है, इसी रूप में जगत् को अनादि कहना अयुक्त है। पृथिव्यादि पदार्थ अवयव संयोग से बने परीक्षा द्वारा प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। यह कहना भी सर्वथा अयुक्त है, कि जगत् का कर्ता ईश्वर कोई नहीं, जीवात्मा ही सिद्ध अवस्था को प्राप्त होकर जगद्रचना कर सकते है। जीवात्मा की सिद्ध अवस्था तक पहुँचने के लिये भी संसार की आवश्यकता है, यह संसार किसने बनाया ? किसी जीवात्मा का अनादि सिद्ध होना सम्भव नहीं। यदि कोई चेतन आत्मतत्त्व सृष्टि रचना का सामर्थ्य रखने वाला अनादि सिद्ध माना जाता है, तो उसे ही परमात्मा कहा जा सकता है।

सृष्टि का क्रम प्रवाह से अनादि है, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जगत् के अनादि काल से चले आते है, अनन्त काल तक इसी प्रकार चलते रहेंगे, यह ऐश्वरी व्यवस्था है। कल्प-कल्पान्तर मे परमेश्वर ऐसी ही सृष्टि को बनाता, धारण करता एवं प्रलय करता रहता है। ईश्वर के कार्य मे कभी भूल चूक या विपर्यास नही होता।

दर्शनों में विरोध

प्रश्न—सृष्टि विषय मे क्या वेदादि शास्त्रो का एवं भारतीय दर्शनो का परस्पर विरोध नही है ? कही आत्मा से, कही परमाणु से, कही प्रकृति से, कही ब्रह्म और कही काल एव कर्म से सृष्टि कही है। इनमें स्पष्ट विरोध प्रतीत होता है।

उत्तर—इनमे विरोध कोई नहीं, ये सब एक दूसरे के पूरक हैं। प्रत्येक कार्य अनेक कारणो से बनता है। यह कहा जा चुका है, कार्यमात्र के तीन कारण हुआ करते हैं, निमित्त, उपादान और साधारण। न्यायादि दर्शनो मे

जगत् के विभिन्न कारणों का वर्णन है, और उसके लिये अन्य उपयोगी विधियों का। प्रत्येक वस्तु की सिद्धि के किसी भी स्वर पर हमे प्रमाणों का आश्रय लेना पड़ता है, इस स्थिति का कोई दर्शन विरोध नहीं करता। तत्त्व विषयक जिज्ञासा होने पर प्रारम्भ में शिक्षा का उपक्रम वहीं से होता है, जिनका प्रतिपादन वैशेषिक दर्शन करता है। तत्त्वों के स्थूल-सूक्ष्म साधारण स्वरूप और उनके गुण-धर्मों की जानकारी पर ही आगे तत्त्वों की अति सूक्ष्म अवस्थाओ को जानने समझने की ओर प्रवृत्ति एवं क्षमता का होना सम्भव है। प्रमाण और बाह्य प्रमेय का विषय न्याय-वैशेषिक दर्शनों में प्रतिपादित किया गया है। तत्त्वों की उन अवस्थाओ और चेतन-अचेतन रूप मे उनके विश्लेषण को साख्य प्रस्तुत करता है। चेतन-अचेतन के भेद को साक्षात्कार करने की प्रक्रियाओ का वर्णन योग मे है। इन प्रक्रियाओं के मुख्यसाधनभूत मन की जिन विविध अवस्थाओं के विश्लेषण का योग में वर्णन है, वह मनोविज्ञान की विभिन्न दिशाओं का केन्द्रभूत आधार है। समाज के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यो का वर्णन मीमांसा, एवं समस्त विश्व के सचालक व नियन्ता चेतन तत्त्व का वर्णन वेदान्त करता है। यह ज्ञानसाधन कार्य-क्रम भारतीय संस्कृति के अनुसार वर्णाश्रम धर्मों एव कर्त्तव्यो के रूप मे पूर्णतया व्यवस्थित है। इन उद्देश्यो के रूप में कही किसी का किसी के साथ विरोध का उद्भावन अकल्पनीय है। दर्शनों मे जिन तत्त्वों का निरूपण किया है, सृष्टि-रचना मे एक दूसरे के पूरक होकर वे तत्त्व पहले कहे तीन कारणो मे अन्तर्हित अथवा समाविष्ट हैं, इनमें विरोध का कहीं अवकाश नही।

प्राणी का प्रादुर्भाव कैसे ?

प्रश्न—पृथिव्यादि लोक-लोकान्तर तथा पृथिवी पर औषधि वनस्पति आदि उत्पन्न हो जाने पर सचरणशील प्राणी का प्रादुर्भाव कैसे होता है? चालू सर्गक्रम मे ऐसे प्राणी का प्रजनन मिथुनमूलक देखा जाता है, यह स्थिति सर्गादिकाल में होनी संभव नही। यह एक उलझन भरी समस्या है, कि सर्वप्रथम प्राणी का प्रादुर्भाव कैसे हुआ।

उत्तर—सर्वप्रथम प्राणी का प्रादुर्भाव बाह्य मिथुनमूलक नही होता। परमात्मा अपनी अचिन्त्यशक्ति एवं व्यवस्था के अनुसार स्त्री-पुरुषो के शरीर

बनाकर उनमे जीवो का सयोग कर देता है। शरीर की रचना जिस प्रक्रिया के अनुसार चालू होती है, उसमे जीवात्मा का संचार प्रथमत: हो जाता है। प्राणी शरीर की रचना अत्यन्त जटिल है, शरीर-रचना की इस सुव्यवस्था को देखकर रचना करने वाले का अनुमान होता है, जो व्यवस्था जिस प्राणी वर्ग मे निहित कर दी गई है। वह चालू संसार के मिथुन-मूलक प्रजनन मे अब तक चली आ रही है, और प्रलयपर्यन्त चलती रहेगी। इससे आदि शरीर की रचना बाह्य मैथुन रहित केवल परमात्मा की नित्य व्यवस्था के अनुसार होती है। यह अनुमान वर्तमान मे देखी गई व्यवस्था के आधार पर किया जा सकता है।

प्रश्न—इतने कथन से आदि सर्ग मे मानव शरीर रचना की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण नही होता। इसका और स्पष्ट विवरण देना चाहिए।

उत्तर—आदि सर्ग मे प्राणी देह की रचना ऐश्वरी सृष्टि में गिनी जाती है। सर्वप्रथम जो प्राणी हुए, विशेषत: मानव प्राणी, उनका पालन-पोषण करने वाला माता-पिता आदि कोई न था। इसलिये यह निश्चित सम्भावना होती है, कि वे मानव किशोर अवस्था मे प्रादुर्भूत हुए, कतिपय आधुनिक वैज्ञानिक भी ऐसा मानने लगे हैं। बोस्टन नगर के स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूट के जीव विज्ञान शास्त्र के अध्यक्ष डा० क्लॉर्क का कथन है—मानव जब प्रादुर्भूत हुआ, वह विचार करने, चलने फिरने और अपनी रक्षा करने के योग्य था Man appeared able to think walk and defend himself.

समस्या यह है, कि मानव का ऐसा विकसित देह सर्वप्रथम प्रादुर्भूत कैसे हुआ ? उसकी रचना किस प्रकार हुई होगी ? सचमुच यह समस्या अत्यन्त गम्भीर है। ऐसी स्थिति मे ऐसे शरीरो का प्रकट हो जाना अनायास बुद्धिगम्य नही है। इसे समझने के लिये हमे चालू सर्गकाल के प्रजनन की स्थिति पर ध्यान देना चाहिये, सम्भव है वहाँ की कोई पकड इस समस्या को सुलझाने में सहयोग दे सके। साधारण रूप से प्रजनन की विधा चार वर्गों मे विभक्त है—जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज अथवा ऊष्मज। अन्तिम वर्ग अतीसुक्षम अदृश्य कृमिकीटो से लगाकर दृश्य क्षुद्रजन्तुओ तक का है। इस वर्ग

के प्राणी का देह नियत ऊष्मा पाकर अपने कारणों से उद्भूत हो जाता है। उद्भिज्ज वर्ग वनस्पति का है। चालू सर्ग काल में देखा जाता है, कि बीज से वृक्ष होता है, पर सबसे पहले वृक्ष का बीज कैसे हुआ, यह विचारणीय है। निश्चित है, कि वह बीज वृक्ष पर नहीं लगा, तब यही अनुमान किया जा सकता है, कि उसकी रचना प्रकृति गर्भ मे होती रही होगी। बीज मे प्रजनन शक्ति-अंश एक कोष (खोल) मे सुरक्षित रहता है, यह स्पष्ट है। वृक्ष पर बीज के निर्माण की प्रक्रिया भी नियन्ता की व्यवस्था के अनुसार प्रकृति का एक चमत्कार है, वंश बीज-निर्माण की प्रक्रिया क्या है, प्रजनन-अंश किस प्रकार कोष मे सुरक्षित हो जाते हैं, जड़ से बीज तक कैसे उसका निर्माण होता आता है, इसे आज तक किसने जाना हे ? इसी प्रकार अण्डजवर्ग मे बीज एक अति सुरक्षित कोष मे आहित रहता है, इस वर्ग मे कीड़ी तथा उससे भी अन्य कतिपय सूक्ष्म जन्तुओ से लेकर अनेक सरीसृप जाति के प्राणी स्थलचर तथा जलचर एव नभचर पक्षी जाति का समावेश है। विभिन्न जातियों के देहो के अनुसार कोश की रचना छोटी-बड़ी देखी जाती है। इस वर्ग का भ्रूण एक विशेष प्रकार के खोल से सुरक्षित रहता है, मातृ-गर्भ में उपयुक्त पोषण प्राप्त कर गर्भ से बाहर भी नियत काल तक कोश युक्त रहता हुआ पोषण प्राप्त करता है। भ्रूण का यथायथ परिपाक होने पर खोल फटता है, और बच्चा निकल आता है, यह प्रकृति का एक चमत्कार है। इस वर्ग में उत्पत्तिकाल की दृष्टि से कुछ अधिक बड़े देहवाले प्राणियो का समावेश है, तथा यह एक विचारणीय बात है, कि भ्रूण का गर्भ से बाहर भी परिपोषण होता है।

अण्डज वर्ग के आगे बडी देह वाला प्राणी-वर्ग जरायुज है, जिसमे मानव एव समस्त पशु-मृग आदि का समावेश है। कोश मे भ्रूण के परिपोषण की प्राकृत व्यवस्था इस वर्ग मे भी समान है। मातृगर्भ भ्रूण पूर्णाङ्ग होने तक जरायु मे परिवेष्टित रहता है। स्निग्ध सुदृढ़ चमड़े जैसे पदार्थ की थैली का नाम जरायु है, पूर्णाङ्ग होने पर बालक इसको भेद कर ही मातृगर्भ से बाहर आता है। इस प्रकार भ्रूण की सुरक्षा, उपयुक्त पुष्टि व वृद्धि तक के लिए उसका विशिष्ट कोश मे परिवेष्टित होना सर्वत्र प्राणी-वर्ग में समान है। यह एक ऐसी नियत व्यवस्था है, जो प्राणी के प्रादुर्भाव की आद्य-स्थिति पर

पर्याप्त प्रकाश डालती है। चालू सर्गकाल अथवा मैथुनी सृष्टि में नर-मादा का संयोग प्राणी के साजात्य प्रजनन की जिस स्थिति को प्रस्तुत करता है, वह स्थिति अमैथुनी सृष्टि में प्राकृत नियमों व व्यवस्थाओं के अनुसार प्रकृति गर्भ मे प्रस्तुत हो जाती है। इस व्यवस्था से और अण्डजवर्ग के समान मातृगर्भ से बाहर भ्रूण की परिपोषण प्रक्रिया से यह अनुमान होता है कि सर्व-प्रथम आदिकाल मे मानव आदि बड़े देहों की रचना प्रकृतिपोषित सुरक्षित उपयुक्त कोशो द्वारा हुई होगी। चालू सर्गकाल मे देहों के अनुसार कोशो के आकार में विभिन्नता देखी जाती है। यह सम्भव है, आदिकाल में प्रकृतिनिर्मित उपयुक्त कोशों में सुरक्षित एव परिपोषित मानव आदि के किशोरावस्थापन्न सजीव देह यथावसर प्रादुर्भूत हुए हों। आदिसर्ग मे विविध प्राणियों का अनेक संख्या मे प्रादुर्भाव हो जाता है, यह मानने मे कोई बाधा नहीं है। यह सब जीवो के कर्मानुसार ऐश्वरी व्यवस्था के सहयोग से हुआ करता है।

आदि मानव का मूल स्थान

प्रश्न—सर्वप्रथम मानव का प्रादुर्भाव पृथ्वी के किस प्रदेश पर हुआ ?

उत्तर—भारतीय साहित्य के आधार पर अनेक दिशाओं से यह स्पष्ट होता है कि मानव का सर्व प्रथम प्रादुर्भाव 'त्रिविष्टप' नामक प्रदेश में हुआ, जो वर्तमान तिब्बत के कैलाश, मानसरोवर प्रदेश तथा उससे सुदूर पच्छिम और कुछ दक्खिन-पच्छिम की ओर फैला हुआ था। कुछ समय पश्चात् गंगा सरस्वती आदि नदी घाटियों के द्वारा आर्यो ने भारत प्रदेश में आकर निवास किया और इसका आर्यावर्त्त नाम रक्खा, सर्वप्रथम यहां आर्यों का निवास हुआ। उनसे पहले यहाँ अन्य किसी मानव का निवास नहीं था। आर्यो का मूल स्थान और यह भूभाग एक ही देश था। आर्य कहीं बाहर से यहाँ कभी नही आये। इक्ष्वाकु से लेकर कौरव-पाण्डव पर्यन्त पृथ्वी के इन समस्त भागो पर आर्यो का अखण्ड राज्य और वेदो का थोड़ा-थोड़ा सर्वत्र प्रचार रहा। अनन्तर आर्यों का आलस्य, प्रमाद और परस्पर का विरोध समस्त ऐश्वर्य एवं विभूतियो को ले बैठा। पृथिव्यादि लोको की लगभग एक

अरब सत्तानवें करोड़ वर्ष की आयु में अब तक आर्यों का अधिक काल अभ्युदय का बीता है। वेद धर्म पर प्रज्ञा पूर्वक आचरण करने से अब भी उत्कृष्ट अभ्युदय की सम्भावना की जा सकती है।

इस प्रकार सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने अतिसूक्ष्म प्रकृतिरूप उपादान करण से जगत् को बनाया, जो असंख्य पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों के रूप मे दृष्टि-गोचर हो रहा है। ये समस्त लोक अपनी गति एव परस्पर के आकर्षण से ऐश्वरी व्यवस्था के अनुसार अनन्त आकाश मे अवस्थित हैं। जैसे परमेश्वर इन सब का उत्पादक है, वैसे ही इनका धारक एवं सहारक भी रहता है। हमारी इस पृथ्वी के समान अन्य लोक-लोकान्तरों मे भी प्राणी का होना संभव है। जीवात्माओ के कर्मानुष्ठान और सुख-दुःखादि फलो को भोगने तथा आत्म-ज्ञान होने पर अपवर्ग की प्राप्ति जगद्रचना का प्रयोजन है। असंख्य लोकान्तरो की रचना का निष्प्रयोजन होना सम्भव है। अतः लोकान्तरो मे भी प्राणी का होना सम्भव है। वेद का ज्ञान सब के लिए समान है। समस्त विश्व पर परमेश्वर का नियन्त्रण रहता है। उसी व्यवस्था के अनुसार सब तत्त्व अपना कार्य किया करते हैं।

●

मै आधुनिक भारत के मार्ग-दर्शक उस दयानन्द को आदरपूर्वक श्रद्धांजलि देता हूं, जिसने देश की पतितावस्था मे भी हिन्दुओ को प्रभु की भक्ति और मानव-समाज की सेवा के सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया।

—कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर